

स्याद्वाद-दृष्टि

(पं. शिवनारायण गौड़)

यह विस्तृत, विशाल संसार हमारे जीवन की चरम इकाई है। इससे परे क्या है कौन जाने? और हम न भी जान पावें तब भी हमारा काम तो चल ही जाता है। प्रसन्नता की बात है कि उसका आयाम दिन पर दिन बढ़ता जाता है और हमारी उसे देखने-समझने की शक्ति भी कई प्रकार के उपकरणों की सहायता से निरन्तर बढ़ती जा रही है। फिर भी संसार की तुलना में हमारी पृथ्वी नगण्य है और उसकी तुलना में जीव जगत् तुच्छ है। पर मनुष्य पर विचार करें तो उसकी एक प्रकार की तुच्छता दूसरे प्रकार की उच्चता में बदलती दिखाई देती है। मनुष्य का शरीर चाहे छोटा हो, उसकी शक्तियां चाहे सीमित हों अपने ज्ञान की पूंजी के कारण वह बहुत बड़ा है और उसकी गुप्त संभावनाओं पर विचार करें तो उसकी क्षमता देवों की कोटि तक पहुंचती दिखाई देती है।

अपने ज्ञान की कुंजी से ही वह संसार के रहस्य खोजने का प्रयास करता है। इस रूप में उसे जो कुछ मिलता है उसे हम विज्ञान कहते हैं। पर विज्ञान क्या अन्तिम सच्चाई है? विज्ञान के इतिहास को देखें तो वह एक ऐसा यात्री है जिसकी यात्रा का क्षितिज विस्तृत होता जाता है, पर मंजिल कहां है, अन्तिम लक्ष्य क्या है, इसे अनन्त का पथिक कैसे जान सकता है?

पर मनुष्य भी कोई हार माननेवाला प्राणी नहीं है। एक यात्रा करता है तो दूसरा उसकी सहायता करता है और तीसरा उसका मार्गदर्शन करता चलता है। हमारा जीवन पारस्परिक सहयोग का एक अच्छा उदाहरण है। हरेक अपने योग्य काम चुन लेता और जीवनक्रम को आगे बढ़ाता है, इसीलिए हरेक अलग-अलग काम-धंधे करता दिखाई देता है, पर अन्तिम रूप में सब एक ही उद्देश्य में लगे रहते हैं। इस सामूहिक एकलक्ष्यी जीवन को समझने के प्रयास को हम दर्शन कहते हैं। दर्शन की यात्रा भी बहुत लम्बी और व्यापक रही है, पर उसका अन्तिम उद्देश्य रहा है जीवन और उसके साथ जगत में एकरूपता खोजना, संसार की विषमताओं के बीच एकता तलाशना, विरोधों के बीच समन्वय स्थापित करना।

निश्चित ही यह कार्य विज्ञान से भी अधिक कठिन है। विज्ञान संसार के विशिष्ट करते देखने का प्रयास करता है, पर विश्लेषण से वस्तु की सत्ता लोप चाहे न हो। रूपान्तरित तो हो ही जाती है। हमारा जीवन ही नहीं। उसका आधार यह संसार भी एक इकाई के रूप में, एकलक्ष्यी यात्री की भांति पूरी व्यवस्था के साथ नियमित रूप से निरन्तर चल रहा है, चल ही नहीं रहा एक यात्रा कर रहा है, इसलिए उसके अंगों, उसके पथ या पड़ावों का बिखरा विश्लेषण पूरी यात्रा व उसके जुड़े उद्देश्य का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत नहीं कर सकता। इस कार्य का सम्पादन दर्शन करता है। वह जीवन जगत का संश्लिष्ट चित्र देकर उसे जीवित रूप में हमारे सामने रखने का प्रयास करता है।

दर्शन हो या विज्ञान इनके कार्य हवा में नहीं चलते वे इस संसार के सहारे चलते हैं, संसार में रहकर चलते हैं, अपने सीमित साधनों से चलते हैं। इस कार्य में सहायता करते हैं हमारे शरीर, उसकी इन्द्रियां, हमारे सहित यह पूरा संसार। एक प्रकार से हम संसार के द्वारा ही संसार को समझने का प्रयास करते हैं, विचारों के द्वारा विचार और संसार को जानने का प्रयास करते हैं, इस बीच यह संसार भी हमारे जीवन, हमारे विचार और स्वयं अपने को प्रभावित करता रहता है। यह स्थिति वैसी ही है जैसे आंखों से आंखों को देखना, किसी पैमाने से खुद उस पैमाने को नापना, विचार से विचार पर विचार करना।

गनीमत है कि हममें और संसार में ऐसी क्षमता है कि वह स्व को पर में और परको स्व में बदल सकता है। इस कार्य में उसे विचार, भाव कल्पना व उद्भावना से बड़ी सहायता मिलती है। इनके कारण वह धोखा भले ही खा जावे, इनकी सहायता से स्व और पर में आलोडन विलोडन करके संसार को (और अपने को भी) विविध दृष्टियों से, विविध प्रकार से समझने, परखने में सफल होता है।

इस दार्शनिक विचारधारा के अनुसार सत्य एक है, उसके रूप अनेक हैं, भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न देशकाल के अनुसार सत्य के एक अंश को ही ग्रहण कर सकते हैं, जब सभी दृष्टियां आंशिक सत्य हैं तो पूर्ण सत्य को पाने का एक ही मार्ग है उनका योग। पर यह योग यदि बेमेल हो तो टांग सिर पर और सिर पेट पर बिठा देने जैसी स्थिति बन सकती है। इसीलिए विरोध में अविरोध की सम्यक् स्थापना करना ही स्याद्वाद की साधना है।

संसार के विषय में दो अतिवादी दृष्टियां हैं - पहली वैदिक दर्शन के अनुसार

सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेह नानाऽस्ति किंचन।

आरामं तस्य पश्यन्ति, न तत् पश्यति कश्चन ॥

यह सारा संसार अलग-अलग दिखाई देकर भी मूलतः एक ही ब्रह्मसत्ता का विस्तार है, वैसे ही जैसे दुनिया भर का पानी कई स्थानों से कई रूपों में समुद्रतक पहुंच कर बादल बनता, बिजली व गर्जन में बदलकर फिर जल बन जाता है। यही दशा मिट्टी (पृथ्वी), आग (अग्नि) आदि की भी है। ये कई रूपधारण करके भी अन्ततः एक ही ब्रह्म तत्त्व के आभास हैं, परिवर्तितरूप हैं। वे ब्रह्म से उत्पन्न (परिणत) होते और ब्रह्म में ही लीन होकर ब्रह्ममय बन जाते हैं।



दूसरे छोर पर बौद्धों का वह क्षणिकवाद है जिसके अनुसार संसार या उसके पदार्थ -

अनिरुद्धमनुत्पादं-मनुच्छेदम शाश्वतम् ।

अनेकार्थमनानार्थमनागम-मनिर्गमम् ॥ इसीको दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि

न सद, नासद, न सदसत्, न चानुभयात्मकम् ।

चतुष्कोटि विनिर्युक्तं सत्त्वं माध्यमिका विदुः ॥ - माध्यमिकावृत्ति उनके मतानुसार तो - परमार्थो हि आर्याणां तूष्णीभावाः । मा.वृ.

यह संसार क्या है, पदार्थ क्या है आदि प्रश्नों पर चुप्पी साध लो । बुद्ध ने दार्शनिक प्रश्नों को अव्याकृत कहकर छुड़ी पाली ।

इन दोनों ध्रुवों के बीच और भी कई विचारधाराएं हैं जो भेद, अभेद, एक अनेक, स्थायी-अस्थायी आदि रूपों में इस संसार का वर्णन करती हैं । पर जैन मत में वे सब एकांगी हैं, एकांशी हैं, खण्डित या एकाग्रही हैं । सत्य को पूर्णरूप में समझने के लिए उनमें समन्वय और सभी का समादर करने की आवश्यकता है । इसी अनाग्रही, सर्वांगीण, सामञ्जस्यपूर्ण दृष्टि को स्याद्वाद या अनेकान्तवाद का नाम दिया गया ।

सत्य एक है किन्तु उसको समझने के दृष्टिकोण अनेक हैं । विभिन्न दृष्टिकोणों में अनाग्रहपूर्वक सत्य का साक्षात्कार करना और उसका सम्यक् निर्वचन करना यही स्याद्वाद या अनेकान्तवाद है ।

विश्व की संरचना विविध विरोधों का समन्वित रूप है और वे सब उसके धर्म हैं, स्वभाव हैं । उनके अतिरिक्त विश्व का अन्य कोई रूप नहीं है । ये विरोध प्रतिद्वन्द्वी नहीं हैं, किन्तु परस्पर सापेक्ष हैं । उनका आधार एक है और वे आधार के प्रति एकनिष्ठ हैं । इस तथ्य को स्वीकार करने पर वैचारिक संघर्ष और विवाद के लिए अवकाश ही नहीं रह जाता है ।

“स्याद्वाद दृष्टि अनाग्रही होती है । उसका लक्ष्य सत्य की खोज करना है इसीलिए उसकी एक ही आकांक्षा रहती है यत्सत्यं तन्मदीयम् । जो सत्य है वही मोक्ष है । उसका मानना है कि,

सयं सयं प्रसंता, गरदंता, परं लखं ।

जे उ तत्थ विडस्यन्ति, संसारे ते विडस्सिया ॥

जो अपने को पंडित मान कर अपनी ही प्रशंसा करते और दूसरों की निन्दा करते हैं वे संसार में चक्कर लगाते रहते हैं ।

स्याद्वाद दृष्टि का मानना है कि सत्य एक है, उसके रूप अनेक हैं । देशकाल के अनुसार वे सत्य के एक अंश को ही ग्रहण कर सकते हैं । अतएव परस्पर विरोधी दिखाई देती हुई भी वे सभी दृष्टियां सत्य हैं ।

जैनदर्शन के अनुसार सम्यक् दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः है । ज्ञान की उपलब्धि के दो साधन हैं, प्रमाण और नय । प्रमाण का अर्थ है सकलादेश और नय का विकलादेश - सकलादेशः प्रमाणाधीनो, विकलादेशो नयाधीन इति (सर्वार्थसिद्धि 9-6)

यह ज्ञान पदार्थ पर आधारित होता है । सत्य सत् या सत्ता पर निर्भर करता है । यह संसार विविध पदार्थों का संग्रह है जिन्हें

समष्टि व व्यष्टि दोनों ही रूपों में इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि,

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तम् सत् । या प्राकृत में उप्पन्नेइवा विमेइ वा धुवेइ वा । पदार्थ, वस्तु या द्रव्य उत्पन्न होता, नष्ट होता, दिखाई देता है फिर भी मूलरूप में बना भी रहता है या इतने परिवर्तनों, रूपान्तरों के बीच भी स्थिर रहता है, मूलरूप में नष्ट नहीं होता ।

परिवर्तनशील संसार में पदार्थों के रूपान्तर होते रहते हैं, उनके गुणधर्म बदलते रहते हैं, एक ही व्यक्ति बाल, युवा, वृद्ध होता है, वह भले-बुरे कर्म करता है, पदार्थ के रूप, रंग, रस, कार्य बदलते जाते हैं । इस प्रकार वस्तु अनेक धर्मात्मक है, जिनमें से कुछ समान होते हैं तो कुछ विरोधी । इन विशेषताओं को समझकर वस्तुस्थिति का परिचय पा लेना ही ज्ञान है । उसकी ओर आगे बढ़ने का प्रारम्भिक साधन है ।

विरोधी धर्मों का निषेध न करते हुए वस्तु के एक अंश या धर्म को ग्रहण करने वाला ज्ञाता का अभिप्राय नय कहलाता है । (अनिराकृतप्रतिपक्षो वस्त्वंशग्राही ज्ञातुरभिप्रायो नयः।) प्रमाणसे निश्चित किये हुए पदार्थों के एक अंश के ज्ञान करने को नय कहते हैं । (प्रमाण परिच्छिन्नस्यानन्तधर्मात्मकस्य वस्तुनि एक देशग्राहिणस्तदितरांशोऽप्रतिक्षेपिणोऽध्यवसायविशेषा नयाः । अथवा प्रमाणप्रतिपन्नार्थैकदेशपरामर्शो नयः ।

नय का अर्थ है अभिप्राय, दृष्टि, विवक्षा, या अपेक्षा तथा अपेक्षाभेद से होनेवाले वस्तु के विभिन्न अध्यवसाय । नय कथन करने की एक प्रक्रिया है, वचन-विन्यास है । वे ज्ञान की ओर ले जाते हैं, नयन्तीतिनयाः । नय का अभिप्राय यही है कि सभी पक्ष, सभी मत पूर्ण सत्य को जानने के भिन्न-भिन्न प्रकार हैं । किसी एक प्रकार की इतनी प्रधानता नहीं कि वही सत्य है और दूसरा सत्य नहीं है । सभी पक्ष अपनी-अपनी दृष्टि से सत्य हैं । इसीलिए दृष्टियां भी अनेक हो सकती हैं । जावइआ वयणपदा तावइआ चेव हुंति नयवादा । सत्य के जितने कथन हो सकते हैं उतने ही नय वाद हैं । नय एक ही वस्तु को अपेक्षाभेद से या अनेक दृष्टिकोणों से ग्रहण करने वाले विकल्प हैं ।

प्रमाण और नय में यह अन्तर है कि प्रमाण में अनन्त धर्मात्मक वस्तु के सभी धर्मों के ज्ञान का समावेश हो जाता है और नय वस्तु के किसी एक अंश को मुख्य और अन्य अंशों को गौण करके ग्रहण करता है, किन्तु उनकी उपेक्षा या तिरस्कार नहीं करता ।

नय के व्यापक क्षेत्र को सुविधा के विचार से निम्नलिखित सात क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है । नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरुद्ध और एवंभूत । नाम के साथ इनके क्रमों का भी महत्त्व है । ये एक दूसरे से तो जुड़े हैं ही पर क्रम से स्थूल से सूक्ष्म या सामान्य से विशिष्टता की ओर बढ़ते जाते हैं ।



नयों की संख्या, वर्गीकरण व भेद आदि के विचार से कई प्रकार सामने आते हैं, पर सुविधा की दृष्टि से सर्वमान्य और उपयोगी रूप का ही यहां ग्रहण किया गया है।

नैगम नय - सामान्य विशेषाद्यनेक धर्मोपनयनपरोऽध्यवसायो नैगमः।

सामान्य और विशेष आदि अनेक धर्मों को ग्रहण करने वाला अभिप्राय नैगम नय कहलाता है। ... निगम शब्द का शाब्दिक अर्थ है देश, संकल्प और उपचार। उनमें होनेवाले अभिप्राय को नैगमनय कहते हैं। अर्थसंकल्पमात्रग्राही नैगमः। संकल्प का भाव है अभिप्राय या उद्देश्य। इसमें जिस उद्देश्य से क्रिया की जा रही है उसीकी प्रधानता दी जाती है। जैसे कोई ईंधन, जल, चावल आदि ले जाते हुए व्यक्ति से पूछे कि वह क्या कर रहा है तो वह कहेगा कि मैं खाना पका रहा हूँ। यही दशा लेखक, पाठक आदि की भी हो सकती है। दूसरे रूप में कोई किसी से पूछे कि आप कहाँ रहते हैं और वह उत्तर दे कि मैं लोक में रहता हूँ और उस लोक को संकीर्ण करता हुआ अपने घर तक पहुंच जावे। या कोई कहे कि फल लाओ और वह आम या केला या कोई विशिष्ट फल ले आवे।

कुछ आचार्यों के मत में दो धर्मों, दो धर्म अथवा एक धर्म और एक धर्मों में प्रधानता और गौणता की विवक्षा करनेवाला कथन, नैगमनय माना गया है।

संक्षेप में सामान्य व विशेष में कथंचित् तादात्म्य ही नैगम नय का मूलधार है।

संग्रहनय -

सामान्यमात्रग्राही परामर्शः संग्रह इति। नैगमनय में सामान्य व विशेष दोनों ही अभिप्रेत होते हैं पर संग्रह में केवल सामान्य का ग्रहण किया जाता है। किसी यात्री द्वारा मार्ग पूछे जाने पर जब हम मात्र यह कथन करते हैं कि उस पेड़ के बायें घूम जाना तो हमारा ध्यान इस बात पर नहीं जाता कि पेड़ आम का है या नीम का, यद्यपि पेड़ केवल पेड़ नहीं होता, बड़-पीपल कुछ भी हो सकता है। यही दशा सर्वसामान्य सत् के कथन की है। जब हम कहते हैं कि क्या बढ़िया चीज है, घटना है, दृश्य है तब भी हमारा आशय ऐसे ही सामान्य से होता है।

व्यवहार नय - इस शब्द को निश्चय नय के विपरीतार्थी व्यवहारनय के प्रसंग में भी प्रयुक्त किया जाता है, पर यहां वह एक विशिष्ट (तकनीकी) अर्थ में ही प्रयुक्त किया जाता है।

विशेषात्मकमेवार्थ व्यवहारश्च मन्यते।

विशेषभिन्नं सामान्यमसत्त्व-विषाणवत्।

जब वस्तु के सामान्य गुणों पर ध्यान न देते हुए विशिष्ट गुणों का उल्लेख किया जावे या सामान्य जाति के स्थान पर विशिष्ट वर्ग का उपयोग किया जावे, उस अभिप्राय को व्यवहार नय कहते हैं। जैसे कि जब किसी को फल लाने को कहा जावे और वह आम या केला या फल का और कोई प्रकार ले आवे, जबकि उसे पता है कि आम या केला ही फल नहीं है, ये तो उसके प्रकार मात्र हैं।

संग्रह नय से जाने हुए पदार्थों में योग्य रीति से विभाग करने को व्यवहारनय कहते हैं।

अथवा द्रव्य और पर्याय का वास्तविक भेद जानना व्यवहार नय है।

नैगम, संग्रह और व्यवहार को द्रव्यार्थिकनय के सामान्य वर्ग के अन्तर्गत मान लिया गया है क्योंकि ये द्रव्यसंस्पर्शी हैं। इनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष या पदार्थ (उसके स्थायीरूप) से है। शेषचार को पर्याय संस्पर्शी कहते हैं क्योंकि वे उसके अस्थायीरूप (रूपान्तरों) से सम्बन्धित हैं। इसीलिए ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत का पर्यायार्थिक नय के अन्तर्गत वर्गीकरण किया गया है।

इन चारों में से भी केवल ऋजुसूत्र का पर्याय से सम्बन्ध है। इस सहित प्रथम चार का अर्थ या पदार्थ से सम्बन्ध होने से इन्हें अर्थनय (अर्थतन्त्र) कहते हैं और शेष (अन्तिम) तीन को शब्दनय। (शब्दतन्त्र)

ऋजुसूत्र - ऋजुसूत्रः स विज्ञेयो येन पर्यायमात्रकम्।

वर्तमानैकसमयविषयं परिगृह्यते ॥

ऋजुसूत्र का सम्बन्ध पदार्थ के परिवर्तनशीलरूप से रहता है। अमुक वस्तु अमुक क्षण जैसी दिखाई देती है उसके तत्कालीन उल्लेख को ऋजुसूत्र नय कहा जाता है। जैसे राजा का अभिनय करनेवाले नर को हम उस समय राजा ही कहते हैं। ततः प्रविशति महाराजः। यही दशा विवाह के समय दूल्हे राजा की होती है।

शब्दनय - यह अन्तिम तीन नयों का सामान्य नाम भी है और उनमेंसे प्रथम का विशिष्ट नाम भी है। यहां उसे इसी दूसरे विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। इसका सम्बन्ध शब्द के पर्यायों (पर्यायवाची शब्दों) से है। तस्मादेक एव पर्यायशब्दानामर्थ इति शब्दः। पर्यायवाची शब्द एक दो पदार्थ वाचक हैं। पर इससे भी अधिक इसका भाव यह है कि जो काल, कारक, लिंग, वचन पुरुष और उपसर्ग आदि की भिन्नता के बीच भी शब्द के सामान्य अर्थ को ग्रहण करे। उदाहरण के लिए कुम्भ, कलश, घट मिट्टी से निर्मित एकार्थवाची शब्द हैं। यही दशा इन्द्र, शक्र और पुरन्दर की है। तीनों ही इन्द्र के वाचक हैं। पर व्युत्पत्ति के आधार पर इन्द्र का अर्थ है इन्दते वर्धत इति इन्द्रः, शक्नोति इति शक्रः, पुरं दारयति इति पुरन्दरः समृद्धि के कारण इन्द्र, समर्थ होने से शक्र और पुर का विदारण करने से पुरन्दर भिन्न भाववाची हैं यही समभिरूढनय का अभिप्राय है।

जैन सिद्धान्त के अनुसार शब्दरूढोऽर्थोऽर्थारूढः तथैव पुनः शब्दः। शब्द और अर्थ अन्योन्याश्रित हैं। एक शब्द का एक ही अर्थ और एक अर्थ में एक ही शब्द प्रयुक्त होता है। इसलिए हरेक शब्द का अलग-अलग अर्थ है और पर्यायवाची भी इस नियम से बाहर नहीं हैं।

एवंभूतनय - यह नय पूर्ववर्ती से एक कदम आगे बढ़ कर बताता है कि पर्यायों के निरुक्ति या व्युत्पत्ति



के कारण अर्थ तो भिन्न होते ही हैं उनका प्रयोग भी अर्थ या परिस्थिति के अनुकूल किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए घड़े को घट इसीलिए कहते हैं कि वह (पानी भरते समय) घट-घट करता या गाड़ी में ले जाते समय घड़े घड़-घड़ करते हैं। इसलिए उनके लिए घट या घड़े शब्द का प्रयोग तभी करना चाहिए जब वे घट-घट या घड़-घड़ करें। इन्द्र को पुरन्दर तभी कहना चाहिए जब प्रसंग पुरों के विदारण का हो। मनुष्य को मनुष्य तभी कहना चाहिए जब वह मनन करे या मननशील हो। किसी हत्यारे को तो मानव की बजाय दानव कहना ही सही होगा।

नय निर्विषय न होकर ज्ञान, शब्द या अर्थ किसी न किसी को विषय अवश्य करते हैं। इसका विवेक करना ज्ञाता का स्वार्थ है। जैसे कि एक लोकसत् की अपेक्षा एक है, जीव और अजीव के भेद से दो है, द्रव्य, गुण और पर्याय के भेद से तीन, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप होने से चार, पंच-अस्तिकायों की अपेक्षा पांच और जीवादि षट् द्रव्यों की अपेक्षा छह है।

नय में सापेक्ष दृष्टि रहती है इसीलिए वे सम्यक् ज्ञान के कारण बनते हैं। जो नय निरपेक्षदृष्टिवाले एकान्तवादी, एकपक्षी होते हैं वे मिथ्यानय कहे जाते हैं।

जैन दर्शन की विचार-सरणि इस प्रकार है कि सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य मोक्ष के उपाय हैं। 'दर्शन का अर्थ है तत्त्वार्थ में श्रद्धा (तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यक्दर्शनम्)। तत्त्व या पदार्थों के प्रथम जीव और अजीव में और अजीव को धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, काल नामक ५ वर्गों में विभाजित किया गया है। इन छह को द्रव्य कहते हैं। सत्ता ही द्रव्य का लक्षण है (सद् द्रव्यलक्षणम्) सत् का अर्थ है उत्पादव्ययधैव्ययुक्त होना। जो परिवर्तनों के बीच भी स्थिर रहे वही द्रव्य है। द्रव्य के इस दुहरे रूप को समझने के लिए ही नयवाद या स्याद्वाद की आवश्यकता होती है। द्रव्य का एक अंश गुण और पर्यायवाला है जो परिवर्तनशील है, दूसरा मूलान्श ध्रुव है। पर गुण और पर्यायों के बिना उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। इन दोनों रूपों के सम्बन्धों को जानना नय दृष्टिका मूलधार है। पर वस्तु को अकेले ही नहीं देखा जा सकता, न उसे केवल अस्तित्वरूप में ही देखा जाता है। वस्तु कुछ-कुछ है तो कुछ-कुछ नहीं भी है। वह यदि घट है तो पट नहीं है और पट है तो घट नहीं है। उस तुलनात्मक दृष्टि को चार अपेक्षाओं से देखा जा सकता है।

प्रत्येक द्रव्य का अपना असाधारण स्वरूप होता है। उसका निजी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव (गुण) होता है, जिनमें उसकी सत्ता सीमित रहती है। ये चारों उसके स्वरूप चतुष्टय कहे जाते हैं। प्रत्येक द्रव्य अपने स्वरूप चतुष्टय से सत् होता है और पररूप चतुष्टय से असत्। जैसे कि बीकानेर में शीतकाल में बना हुआ मिट्टी का काला घड़ा, द्रव्य से मिट्टी का है किन्तु स्वर्ण आदि अन्यरूप नहीं है। क्षेत्र से बीकानेर में बना हुआ है, दूसरे क्षेत्र का नहीं है। काल की अपेक्षा शीत ऋतु में बना हुआ है, दूसरी ऋतु में निर्मित नहीं है। भाव या गुण की अपेक्षा काले वर्ण का है, लाल आदि वर्णवाला नहीं है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये चार अपेक्षाओं के आधार से दर्शक वस्तुदर्शन करता है। ये चारों द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिक

नयों से संगृहीत हो जाते हैं। इनके द्वारा वस्तु की नित्यानित्यता, भेदाभेदता, एकानेकता आदि को सिद्ध किया जा सकता है।

जब तक उन सभी प्रकार के नयों को नहीं समझा जावे तब तक अनेकान्तवाद या स्याद्वाद का ठीक आशय समझ में नहीं आ सकता। ये नय दृष्टि या स्याद्वाद की आधारशिला हैं।

पदार्थ को ज्ञान, शब्द और अर्थ के आकारों में बांटने का आधार निक्षेप पद्धति है। अप्रस्तुत का निराकरण करके प्रस्तुत का बोध कराना, संशय को दूर करना और तत्त्वार्थ का अवधारण करना निक्षेप पद्धति का प्रयोजन है। नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये निक्षेप के चार भेद हैं। यद्यपि जगत में ठोस और मौलिक अस्तित्व द्रव्य का है परन्तु व्यवहार केवल परमार्थ अर्थ से नहीं चलता। अतः व्यवहार के लिए पदार्थों का निक्षेप शब्द, ज्ञान और अर्थ - तीन प्रकारसे किया जाता है। जाति, गुण, द्रव्य, क्रिया आदि निमित्तों की अपेक्षा किये बिना ही इच्छानुसार संज्ञा रखना नाम कहलाता है। जैसे किसी लड़के का नाम गजराज रखना, यह शब्दात्मक अर्थ का आधार है। जिसका नामकरण हो चुका है उस पदार्थ का उसी के आकार वाली वस्तु में या अतदाकार वस्तु में स्थापना करना स्थापना निक्षेप है। जैसे हाथी की मूर्ति में हाथी की स्थापना या शतरंज के मुहरे को हाथी कहना। यह ज्ञानात्मक अर्थ का आधार होता है। अतीत और अनागत पर्याय की योग्यता की दृष्टिसे पदार्थ में वह व्यवहार करना द्रव्य निक्षेप है। जैसे युवराज को राजा कहना या जिसने राजपद छोड़ दिया है उसे भी वर्तमान में राजा कहना। वर्तमान पर्याय की दृष्टि से होने वाला व्यवहार भाव निक्षेप है। जैसे राज्य करनेवाले को राजा कहना।

हमारा समस्त व्यवहार कहीं शब्द, कहीं अर्थ और कहीं स्थापना अर्थात् ज्ञान के सहारे चलता है। या कहा जा सकता है कि शब्द ही पदार्थ का ज्ञान प्राप्त कराने में सहायक होते हैं। ज्ञान के साधक के लिये इन शब्दों की सार्थकता वाक्यों में प्रयुक्त होने पर ही संभव है। केवल 'घट' या अकेले 'है' का कोई तात्पर्य नहीं, न लाल-पीला से कोई उद्देश्य पूरा होता है। जब कोई कहता है कि यहां एक घड़ा पड़ा है या यह घड़ा लाल है या लाल और पीला रंग है, या यह घड़ा लाल नहीं पीला है, हो सकता है यह घड़ा कभी लाल रहा हो पर अभी पीला पड़ गया है। मुझे नहीं मालूम रंग क्या होता है। आदि वाक्य पदार्थ, घटना, आदि के विषय में जानकारी देते हैं। इन विविध कथनों को विधि और निषेध या इससे परे के आधार पर अकेले या मिश्रित रूप में रखने से उनके ७ प्रकार बनते हैं इसीलिए उन्हें सप्तमंगी कहते हैं और हर कथन के साथ दृष्टिभेद सूचक स्यात् शब्द का प्रयोग करने से इस सापेक्ष दृष्टि को स्यात् शब्द को लक्ष्य में रखकर स्याद्वाद और दृष्टि की सापेक्षता के कारण सापेक्षवाद कहते हैं। यहां प्रधानता न सात के अंक या प्रकार की है न स्यात् शब्द के प्रयोग की। महत्ता उस दृष्टि की है जो इसका मूलधार है। नयों के प्रसंग में अनुभव किया गया था कि पदार्थ स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के विचार से सत् और पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और



भाव के विचार से असत् है। इसी बात को घट-पट आदि पर लागू करके संसार के किसी भी पदार्थ के लिए कहा जा सकता है कि वह एकान्तरूप से न सत् है न असत्, न वर्ण्य हैं न अवर्ण्य। उसे देखने-समझने की अनेक दृष्टियां हैं, अनेक अपेक्षाएं हैं, जिन्हें शब्दों या वाक्यों में समेटना हो तो ऐसे सात वाक्यप्रयोग हैं जो समग्ररूप में पदार्थ का सही ज्ञान दे सकते हैं, पर किसी एक पर आग्रह करने से हमारा ज्ञान ही अधूरा नहीं रहता, वह दृष्टि भी दोषपूर्ण बन जाती है।

एकत्र जीवादौ वस्तुनि एकैकसत्त्वादि धर्मविषयप्रश्नवशात् अविरोधेन प्रत्यक्षादिबाधापरिहारेण पृथग्भूतयोः समुदितयोश्च विधिनिषेधयोः पर्यालोचनयाकृत्वा स्याच्छब्दलङ्घितो वक्ष्यमाणः सप्तभिः प्रकारैः वचनविन्यासः सप्तभङ्गीति गीयते। (मल्लिषेण प्रश्नवशात् एकत्र वस्तुनि अविरोधेन विधिप्रतिषेधकल्पना सप्तभङ्गी। स्याद्वाद वह सापेक्ष प्रणाली है जिसमें विधि और निषेध अलगअलग या सम्मिलित रूप से किसी वस्तु के धर्म का बिना विरोध के प्रसंगानुसार सातरूप में कथन करते हैं।

इसी बात को अधिक स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि

स्वपर्यायैः परपर्यायैः उभयपर्यायैश्च सद्भावेन, असद्भावेन, उभयेन, चार्पितो विशेषितः कुम्भः कुम्भाकुम्भावक्तव्योभयरूपादि भेदो भवति - सप्तभङ्गी प्रतिपाद्यत इत्यर्थः।

स्वपर्याय, परपर्याय, उभयपर्याय के द्वारा, सद्भाव, असद्भाव, दोनों ही की विशेषता से युक्त कुम्भ, कुम्भ, अकुम्भ, अवक्तव्य के दो (या अधिक) के जोड़ों से कथन ७ प्रकार का या सप्तभङ्गी रूप में व्यक्त किया जाता है।

इसमें प्रधानता अविरोध की है। एक ही वस्तु अपने से भिन्न नहीं हो सकती। वह स्वधर्म को नहीं छोड़ सकती (वत्युसुहावोधम्नो) पट पट की अपेक्षा से या अपनी विशेषता के कारण अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य के व्यस्त और समस्त एकाधिक या सर्वविध मिश्रण से उसके विषय में कथन सातरूप धारण कर सकता है।

सत्ता एक है या अनेक इस बात को निम्न सातरूपों में व्यक्त किया जा सकता है - १. स्यादेकः, २. स्यादनेकः, ३. स्यादेकानेकश्च ४. स्यादवक्तव्यः ५. स्यादेकश्चावक्तव्यः ६. स्यादनेकश्चावक्तव्यः, ७. स्यादेकश्चानेकश्चावक्तव्यश्च।

सत्ता के स्थान पर घट शब्द के प्रयोग द्वारा इसी बात को निम्न प्रकार समझा जा सकता है -

१. स्यात् घट है - एक अर्थ में, एक अपेक्षा से घट (घट) है। स्यादस्ति घटः
२. एक अर्थ में घड़ा नहीं है। (स्यात् नास्ति घटः)
३. एक अर्थ में घड़ा है और नहीं है (स्यात् अस्ति नास्ति च घटः)
४. एक अर्थ में घड़ा अवक्तव्य है (स्यात् अवक्तव्यः घटः)
५. एक अर्थ में घड़ा है और अवक्तव्य है (स्यात् अस्ति अवक्तव्यश्च घटः)

६. एक अर्थ में घड़ा नहीं है और अवक्तव्य है (स्यान्नास्ति अवक्तव्यश्च घटः)

७. एक अर्थ में घड़ा है, नहीं है और अवक्तव्य है (स्यात् अस्तिनास्तिचावक्तव्यश्च घटः)

इन कथनों के मूलाधार अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य हैं जिन्हें अकेले, दुकेले और सभी के मिश्रण से ७ ही प्रकार बनते हैं इसीलिए कथन की शैली को सप्तभङ्गी नाम दिया गया है। स्यात् सर्वत्र अनुगत रहने से इसे स्याद्वाद कहा जाता है। पर मूल भावना अनेकान्त की होने से इस सिद्धान्त को अनेकान्तवाद कहा जाता है। अनेकान्त एकान्त का विरोधी शब्द है। सिद्धान्त का अन्त जब एकवादी, हठवादी या एकाङ्गी बन जाता है कि संसार के पदार्थ अनेक धर्मात्मक हैं इसलिए किसी एक धर्म का कथन व्यवहारोपयोगी तो हो सकता है पर यथार्थ की दृष्टि तो जबतक उसके सभी गुणधर्मों का पर्यालोचन नहीं किया जावे तब तक हमारा कथन सत्यसे परे, अर्धसत्य या सत्य का एकांश ही हो सकता है। इसीबात को लक्ष्य में रखकर हर कथन को सात प्रकार से परखकर सभी के समवेत कथन को सत्य बताया गया है।

मोटे रूप में इसे हाथी के अंघों द्वारा स्पर्शज्ञान से प्राप्त किये गये अधूरे ज्ञान के समन्वय से समझा जा सकता है। हाथी अकेले खंभे या सूप जैसा नहीं होकर समग्ररूप से हाथी है। इसी प्रकार पदार्थ स्वरूप से स्वद्रव्यरूप है पर पररूप से पररूप द्रव्य से अभिन्न न होकर भिन्न है और मूलरूप में वाणी का विषय नहीं, दोनों से अवक्तव्य है। पर विवक्षाभेद या प्रसंगानुसार इनमें से किसी एक रूप में ही नहीं। इनके मिलेजुले या सभी के मिश्रित रूप में भी वर्णित किया जा सकता है। ये सभी वर्णन अधूरे होने से अर्धसत्य हैं, पूर्णसत्य तो सभी कथनों की समग्रता में है। यही स्याद्वाद दृष्टि का सार है।

एक ही वस्तु भिन्न धर्मा कैसे हो सकती है इसे एक रोचक उदाहरण द्वारा सरलता से समझा जा सकता है -

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पत्ति - स्थितिष्यम्।

शोक प्रमोदमाध्यस्थं जनो याति सहेतुकम् ॥

तीन व्यक्ति किसी सुनार के पास पहुंच गये। हरेक का उद्देश्य भिन्न था। एक को सोने या चांदी का घड़ा (गिलास) बनवाना था, दूसरा उससे मुकुट बनवाना चाहता था और तीसरा सोने या चांदी की डली चाहता था। सुनार मुकुट को तोड़कर घड़ा बना रहा था इसलिए मुकुट चाहनेवाले को दुःख हुआ कि उसका वांछित मुकुट तोड़ा जा रहा था? घड़ा या गिलास चाहने वाले को प्रसन्नता हुई कि सुनार उसके उद्देश्य की पूर्ति कर रहा था, पर जिसे सोना-चांदी चाहिए था उसके लिए तो एकही बात थी कि सुनार उसका घड़ा बनावे, मुकुट ही बना रहने दे या दोनों को ही तोड़-फोड़ कर डली में बदले यही अभिप्राय, अपेक्षा, विवक्षा जब शब्दों का जामा पहनकर सामने आती है तो विविधरूपी होने



से सप्तभंगीरूप में प्रकट होती है और क्रमबद्ध सात रंगोंवाले पंखे को घुमाने से सभी का एकरूप सफेद बन जाता है। वही सफेद रंग का सूर्य-प्रकाश बरसात में सतरंगीइन्द्र धनुष का रूप धारण कर लेता है और बिखरे रूप में कहीं लाल तो कहीं नीला दिखाई देता है।

इसी प्रकार सत्य को देखने की अनेक दृष्टियां हैं। उन सभी का समन्वय स्याद्वाद है। संपूर्णार्थविनिश्चायी, स्याद्वादं श्रुतमुच्यते (न्यायावतार)

स्याद्वाद का अर्थ है विभिन्न दृष्टिकोणों का पक्षपात रहित होकर तटस्थ बुद्धि और दृष्टि से समन्वय करना।

वस्तुस्थिति, व्यक्ति और कर्म की दृष्टि से सापेक्ष होती है। प्रसंगानुसार अभीप्सित अर्थ मुख्य और अनभीप्सित गौण हो जाता है; स्व की अपेक्षा उसके एकरूप की सत्ता होती है, दूसरे की अपेक्षा से उसकी सत्ता नहीं होती और दोनों की अपेक्षा से वह क्या है इसका वर्णन वाणी से परे होने से अवक्तव्य भी हो सकता है।

यतो वाचोनिवर्तन्ते अप्राप्य मनसासह। सूरदास ने उसे मन-वाणी से अगम-अगोचर कहा है। तुलसी के शब्दों में - केसव, कहि न जादू का कहिये ? देखत तब रचना विचित्र अति, समुझिमनहि मन रहिये। कुछ ने इसे गूंगे का गुंड बताया है।

स्याद्वाद का शास्त्रीय प्रणेता चाहे किसी काल या क्षेत्र से बंधा हो उसका व्यावहारिक रूप तो वैदिक काल में भी परिचित था, जब सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व की अवस्था के लिए कहा गया था - नअसद् आसीत्, नो सद् आसीत् तदानीम्। तब न असत् था न सत् ही था, वह तो अप्रतीक - प्रतीक, चिन्ह या संकेत रहित था शब्दातीत था। किसे मालूम कि वह क्या था ?

इसी प्रकार मिट्टी, जल आदि के विवर्तों (पर्यायों) को समझाने के लिए कहा गया है - वाचारमणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्। (छांदोग्य) यह संसार नामरूपात्मक है। मूल रूप में अव्याकृत है - तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत् तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत (वृहदारण्यक)

बुद्ध ने इसे विभाज्यवाद का नाम दिया था। पर माध्यमिकों या शून्यवादियों ने तो सबकुछ को नकारते हुए सर्वशून्य बना दिया। अतस्तत्त्वं सदसदुभयात्मक चतुष्कोटिविनिर्मुक्तम् (नागार्जुन) प्रकाशानन्द ने इस संसार को मन की उपज बता कर दृष्टिसृष्टिवाद के रूप में समझाने का प्रयास किया तो बर्कले के लैटिन उक्ति percipi अस्तित्व का अर्थ है दर्शन, मन का प्रक्षेप। यह संसार वही है जैसा हम उसे देखते या देख पाते हैं, वह तभी तक है जबतक हम देखते हैं और जब हम नहीं देखते तो ईश्वर उसे देखता है, पर कोई देखनेवाला नहीं रहे तो यह संसार भी नहीं रहेगा। मुँदिगड़ आंखें, फिर लाखें केहि काम की। आप मरे जग पर जाय।

एक छोर पर ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या, नेह नानास्ति किंचन। ब्रह्मैक्य और दूसरे छोर पर सर्व शून्य के रूप में पूर्णतः अभाव, उन दोनों को एक में समेटने का प्रयास ही स्याद्वाद है।

इसके आधुनिक पदार्थवादी रूप को समझने का प्रयास भी अप्रासंगिक नहीं होगा।

सामान्य भाषा में समझना हो तो किसी विचित्र, चितकबरे, बहुरंगी, बहुमुखी, विविध स्वादवाले पदार्थ को लेकर उसके बारे में किये गये प्रश्नोत्तर से इस दृष्टि से थोड़ा परिचय प्राप्त किया जा सकता है। खट्टे-मिट्टे आम को ही लें। क्या वह खट्टा है, नहीं वह मीठा भी है, क्या वह मीठा है, हां है पर खट्टा भी है, वह मीठा-खट्टा दोनों है, पर न तो केवल मीठा है न खट्टा। फिर उसका असली स्वाद क्या है ? उसे शब्दों से तो कहा नहीं जा सकता कि वह क्या है, क्या नहीं है, वह एक है या अनेक है या मिश्रित रूप में वह क्या है, स्वाद आखिर क्या है, वह आम है या आम का गुण है, पर बिना स्वाद के आम क्या है, जब वह केरी था तब मीठा नहीं था, कल मीठा बनकर वह खट्टा नहीं रहेगा, फिर मीठे और खट्टे में क्या अन्तर है, क्या वे साथ रह सकते हैं, क्या वे एक दूसरे के सहयोगी हैं या रूपान्तर/पर क्या स्वाद को हम आंख से देख सकते हैं, तो स्वाद आम में कहां है, जो दिखाई नहीं देता वह है ऐसा कैसा कहा जा सकता है ? पर आम क्या केवल एकही रूप का होता है ? उसकी दुनिया भरकी जातियां, रूप-रंग, आकार-प्रकार, स्वाद व गंध हैं, उन सबमें सामान्य आम कहां है ? पर उपचारसे तो पूरा पेड़ ही आम है, आम का त्रिआयामी नकलीरूप, चित्र, पर्दे या टी.व्ही. पर प्रदर्शित रूप आम ही तो है, पर उनमें क्या कोई स्वाद है, फिर ये आम कैसे ? एक छोटे से आकार से लेकर किलोभर के, लम्बे, पतले, मोटे सभी में आप्रत्व कहां है, राम की रामता की तरह आम की आमता कहां है ?

ऐसे एक नहीं अनेक प्रश्न आम के बारे में पूछे जा सकते हैं और ज्यों ज्यों उत्तर खोजते या पदार्थ को जानने का प्रयास करते हैं बुद्धि चकराने लगती है, शब्द छोटे पड़ जाते हैं, वर्णन अधूरे रह जाते हैं, मन भ्रम में पड़ जाता है और बोलचाल की भाषा में - है कहूं तो है नहीं, नहीं कहूं तो है। इन दोनों के बीच में कुछ न कुछ तो है। इसीसे सन्तोष करना पड़ता है। ऐसे ही प्रश्नों, जिज्ञासाओं या शंकाओं की समाधानकारक दृष्टि को स्याद्वाद, अनेकान्तवाद या कथन को सप्तभंगी कहा जाता है।

विज्ञान के क्षेत्र में जाकर तो हमारी दृष्टि और भी चकरा जाती है। विज्ञान ने सारी सृष्टि को छान मारा है। वह मोटे से लगाकर छोटे तक का, स्थूल से सूक्ष्म और ब्रह्माण्ड से परमाणु तक सभी का पर्यवेक्षण, परीक्षण, विश्लेषण और वर्गीकरण करके कुछ सामान्य गुणों, तथ्यों या नियमों को जानने का प्रयास करता है, वह दुनिया भर की चीजों में भिन्नता और अभिन्नता खोजता हुआ स्थूल पदार्थ से परमाणु को भी खण्डित करके मूल १०५ तत्त्वों को भी तरंग-दैर्घ्य में परिवर्तित करके इनका भी मूलधार दिक्काल या सातत्य अथवा आकाशीय वक्रता द्वारा समझाने का प्रयास करता है। वह पदार्थ को ऊर्जा और ऊर्जा को तरंगों में बदलते बदलते एक ऐसे संसार में पहुंच जाता है जहां पदार्थ नहीं घटनाएं हैं, क्रियाएं हैं, गति है, परिवर्तनशीलता है, पर वह किसमें है, कहां है, क्यों है आदि का पता ही नहीं लग पाता।



संयोग से विज्ञान के इस दृष्टिकोण को भी हमने सापेक्षवाद नाम दे दिया है और इस रूप में वह स्यादवाद का समानार्थी दिखाई देता है, पर ये दोनों दृष्टियां मूल में एक होकर भी विस्तार में नितान्त भिन्न हैं। एरिंगटन के शब्दों में -

The relativity theory of physics reduces everything to relation, that is to say, it is structure, not material, which counts. The structure cannot be built up without material, but the nature of the material is of no importance.

भौतिकी का सापेक्षवाद सिद्धान्त हर चीज को सम्बन्ध (अपेक्षा) में बदल देता है, अर्थात् वहां महत्त्व पदार्थ का नहीं संरचना का है। यद्यपि संरचना, बिना पदार्थ के नहीं की जा सकती परन्तु वहां भी महत्त्व पदार्थ की प्रकृति का नहीं होता।

केसिपस कायजर के अनुसार होने (अस्तित्व) का अर्थ है सम्बद्ध या सापेक्ष होना। To be is to be related. प्वांकेट के अनुसार Science, in other words, in a system of relations. विज्ञान ने मूल तत्त्वों की संख्या भले ही १०५ तक पहुंचा दी हो, पर ये १०० कौरव और ५ पांडवों की तरह महाभारत के पात्र नहीं हैं, ये सब जिन अणुओं से बने हैं उनका अन्तिम रूप ऊर्जा है। हर पदार्थ न केवल ऊर्जा है अपितु हर पदार्थ को ऊर्जा में बदला जा सकता है और हर प्रकार की ऊर्जा को पदार्थ में रूपान्तरित किया जा सकता है, यहां तक कि जिन ऊष्मा, प्रकाश, विद्युत-चुम्बकत्व आदि को हम अलग-अलग देखते हैं वे भी एक दूसरे में रूपान्तरित किये जा सकते हैं। संसार ऊर्जा का रूपान्तरण है पर न तो ऊर्जा नये सिरेसे बनाई जा सकती है न विद्यमान ऊर्जा का कभी किसी प्रकार अन्त होता है। अतः यहां भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लागू होता है कि पदार्थ में परिवर्तन होता है पर कुछ मौलिक तत्त्व शाश्वत बना रहता है।

हमारी सामान्य दृष्टि में तो पदार्थ को रहने के लिए स्थान चाहिए और बदलने के लिए समय, पर वैज्ञानिक सापेक्षवाद ने तो इन दोनों का मिश्रण बना दिया है। मिंकोवस्की के शब्दों में

Space by itself and time by itself, or doomed to fade away into more shadows, and only a kind of union of the two will proserve an independent reality.

अकेले आकाश या दिक् और अकेले काल को परछाइयों में बदलना होगा, स्वतन्त्र सत्ता तो इनके एक प्रकार के संयोग की होगी। जिसे दिक्काल कहा जा सकता है। परन्तु आइन्स्टाइन ने तो इस मिश्रण के मूलधार ईश्वर को ही गायब कर दिया है। For Einstein, 'space-time' is, semantically, 'fulness', 'not emptiness', and, in his language, he does not need any term like 'ether' or astins 'plenum' 'structurally, covers the ground. आइन्स्टाइन के लिए दिक्काल का अर्थ है परिपूर्णता, रिक्तता (शून्य) नहीं परिपूर्णता की संरचना ही उसके मूलधार का काम दे देती है अतः उसे न ईश्वर की आवश्यकता है न दिशा के तीन और काल के एक अलग-अलग आयामों की।

उसने इन सभी को मिलाकर विश्व को सापेक्ष बना दिया है और इनकी वक्रता व साधनता-विरलता को ऊर्जा का, ऊर्जा को पदार्थों का, इस भरे पूरे संसार का रूप बताकर रूपाकार को सापेक्षता का मूलधार बना दिया है।

जब संसार इस प्रकार का सापेक्ष दृश्य है तो द्रष्टा इसे कैसे समझे? ये दृश्य क्षणक्षण परिवर्तनशील तो हैं ही मनुष्य की पकड़ से भी परे हैं। व्हाइटेड के शब्दों में you cannot recognise an event, because when it is gone, it is gone. हम घटना (परिवर्तन, परिणाम, विवर्त) को नहीं पहचान सकते क्यों कि एक बार बीता कि वह सदा के लिए अतीत बन जाता है, हमारी पकड़ से बाहर पहुंच जाता है। और तो और हम परमाणु में इलेक्ट्रान की गति व स्थिति का पता नहीं लगा सकते क्योंकि गति नापते हैं तो स्थिति बदल जाती है और स्थिति को छूते हैं तो गति गड़बड़ा जाती है। यही दशा प्रकाश के तरंगमयरूप की है। क्वाण्टम वाद के अनुसार प्रकाश कोरी तरंगों के रूप में नहीं आता प्रकाश के पेकेट के रूप में आता है।

दृश्य में द्रष्टा की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आइन्स्टाइन ने समय की सापेक्षता को सुख-दुःख की अनुभूति के अनुसार (उनकी अपेक्षासे) घटता-बढ़ता दिखाया है, पर विज्ञान तो निरपेक्ष तथ्यों तक पहुंचने का प्रयास करता है। पर सापेक्षता तो यहां भी पीछा नहीं छोड़ती। समय की सापेक्षता व्यक्तिगत ही नहीं पदार्थगत भी है, मानसिक ही नहीं भौतिक भी है, इस तथ्य को इस बात से समझा जा सकता है कि अपनी गति में निरपेक्ष प्रकाश (किरणें) सूर्य से हम तक तत्काल नहीं पहुंचती, उन्हें पृथ्वी तक उतरने में ८ मिनट से अधिक लगते हैं। कुछ आकाशगंगाओं या तारों से हम तक पहुंचने में उसे लाखों वर्ष लग जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि उनका जो रूप हम आज देखते हैं वह लाखों वर्ष पहले का है। इस बीच वे पदार्थ नष्ट भी हो गये तब भी वे उसी क्रम में हमें दिखाई देते रहेंगे और दूरी के अनुपात में इतने समयतक उनका अस्तित्व बना रहेगा। इस प्रकार समय स्थान या दूरी के सापेक्ष है, समकालीनता जैसी वस्तु नहीं होती वैसे ही जैसे पदार्थ की स्वतन्त्रता सत्ता है वह दूसरों से तदाकार भले ही हो तादात्म्य नहीं होती। इस तादात्म्य या आइडेन्टिटीने ही अपेक्षा का उपहास किया है जिसकी विस्थापना का प्रयास वर्तमान विज्ञान का लक्ष्य है।

इस क्षेत्र में सबसे बड़ी बाधा भाषा द्वारा उपस्थित की जाती है। संसार को जानने का माध्यम हमारा मन तो है ही, पर बिना भाषा के वह लंगड़ा है। पर भाषा का सहारा लेते ही वह इतना पराधीन हो जाता है कि उसे बार-बार सावधान करना पड़ता है कि भाषा या शब्द संसार या पदार्थ नहीं हैं। आम शब्द आम पदार्थ का स्थान नहीं ले सकता। कोई भी शब्द आपका पूरा या यथार्थ वर्णन नहीं कर सकते। एरिंगटन के अनुसार -

We cannot describe substance, we can only



give a name to it. Any attempt to do more than give a name leads at once to an attribution of structure. But structure can be described to some extent, and when reduced to ultimate terms it appears to resolve itself into a complex of relations ... A law of nature resolves itself into a constant relation.

हम पदार्थ का वर्णन नहीं कर सकते, हम केवल उसे नाम पद या संज्ञा प्रदान कर सकते हैं। इससे अधिक करने का अर्थ है उसकी संरचना का उल्लेख करना। एक सीमा तक संरचना का वर्णन किया भी जा सकता है पर अन्तिम पदों तक पहुँचने का अर्थ हो जाता है संबंधों का संकुल। ... प्रकृति के नियम का अर्थ है ऐसे स्थायी सम्बन्धों की खोज।

पेवस बार्न के शब्दों में Beyond the bounds of science, too, objective and relative reflection is a gain, a release from prejudice, a liberation of the spirit from standards whose claim to absolute validity melts away before the critical judgement of the relations.

विज्ञान की सीमा के बाहर भी भौतिक और सापेक्ष विचार लाभप्रद ही हैं, उनसे पक्षपात से छुटकारा मिलता है और आत्मा ऐसे प्रतिमानों से मुक्त हो जाती है जिनका निरपेक्ष प्रामाणिकता का दावा ऐसे सापेक्षवादी के आलोचनात्मक निर्णय के सामने पिघल जाता (लुप्त हो जाता) है।

सापेक्षवाद का क्षेत्र बड़ा विस्तृत व्यापक है, साथ ही वह इतना गम्भीर व जटिल है कि उसे थोड़े शब्दों में समेट पाना बड़ा

कठिन है। ऊपर इसके केवल वर्णनात्मक रूप का स्पर्श किया गया है। तुलनात्मक रूप में तो विषय और भी जटिल हो जाता। पर वर्णनात्मक रूप के विस्तार को ही देखें तो भेद और उपभेदों, विचारों की शाखाओं प्रशाखाओं, भारतीय विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में सापेक्षवाद के प्रादुर्भाव और विकास तथा पश्चिमी विचारधारा में आध्यात्मिकता से भौतिकता और वस्तुवादी यथार्थ की यात्रा बड़ी लम्बी है।

विभिन्न विरोधी विचारधाराओं का जैसा समन्वय सापेक्षवाद ने किया, यहां तक कि अपने अनेकान्तवाद सिद्धान्त को स्वयं अनेकान्तवाद पर लागू करने से पीछे नहीं हटे (अनेकान्तवादोऽप्यनेकान्तात्मकः), वैसाही प्रयास अध्यात्मवादी अनेकान्त या सापेक्षवाद का भौतिकवादी सम्बन्धवाद या सापेक्षवाद से करने की युगीन मांग की पूर्ति करना ही किसी पुरातनवाद को नवीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का उद्देश्य होना चाहिए।

पर यह किसी विस्तृत ग्रंथ का विषय हो सकता है, साधारण लेख या रचना का नहीं। प्रसंगानुसार इसपर विचार करने का अवसर मिला। इसमें स्याद्वाद पर लिखने की अपेक्षा सीखने का प्रयास अधिक किया गया है। लेख को लिखने में विविध स्रोतों का उपयोग किया गया है, पर प्रधानता दो ग्रंथों की है -

स्याद्वाद सिद्धान्त - एक अनुशीलन आचार्य श्री आनन्दकृष्णिजी, तथा Jaina theories of Reality and Knowledge : Dr. Y. J. Padmarajan.

कोर्जीबस्की की पुस्तक साइंस एंड सेनिटी ने वैज्ञानिक सापेक्षवाद को समझाने में विशेष सहायता की है।

मधुकर-मौक्तिक

हमारे जीवन में कई प्रकार के चक्र हैं। दुनिया का चक्र, बातों का चक्र, धंधे का चक्र और एक-दूसरे को आगे-पीछे धकेलने का चक्र! चक्र के सिवाय और हम हैं ही कहाँ? हमारा जीवन इन चक्रों से मुक्त होना चाहिये। इन सब चक्रों का मूल कारण है कर्म-चक्र; अतः इन दुश्चक्रों से मुक्त होने के लिए कर्म-चक्र से छूटना पड़ेगा; और कर्म-चक्र को यदि रोकना है, तो जीवन में धर्म-चक्र को अंगीकार करना पड़ेगा।

यदि धर्म-चक्र हाथ में होगा तो कर्म-चक्र पीछे हटने लगेगा और फिर यह धर्म-चक्र हमारे जीवन में सुस्थिर हो जाएगा। जिसने धर्म-चक्र को पा लिया, उसे सिद्ध-चक्र तक पहुँचने में समय नहीं लगेगा और उसकी राह में कोई बाधा भी निर्मित नहीं होगी। हमें सिद्ध-चक्र तक पहुँचना है। सिद्ध-चक्र में केवल सीधापन है। वहाँ किसी प्रकार की बाँक नहीं है। सीधेपन से युक्त और चक्र से मुक्त जो स्थिति है, उसे सिद्ध-चक्र कहते हैं। यदि आप सीधेपन में आना चाहते हैं और अपने जीवन को चक्र-मुक्त रखना चाहते हैं, तो फिर जरा गौर से अपने जीवन-मूल्यों को समझते जाइये। उनको समझने के बाद आप अपना जीवन-स्तर ऊँचा उठा सकेंगे और उज्ज्वलतर बन सकेंगे।

— जैनाचार्य श्रीमद् जयन्तसेनसूरि 'मधुकर'

हमारा जीवन-पथ कितना लम्बा है; हमें नहीं मालूम। कितनी लम्बी अपनी जीवन-स्थिति है, नहीं मालूम। अरे, हमें तो इस जीवन का भी पता नहीं है। हमें यह भी मालूम नहीं है कि हमारा यह मूल्यवान जीवन किस प्रकार बीत रहा है? हम होश में हैं ही कहाँ?

मोह महामद पियो अनादि, भुलि आपकू भरमत वादि ॥

हमने तो मोह की तेज शराब पीने की आदत बना डाली है और इसीलिए हम अपने आपको को भूल कर इस संसार-चक्र में व्यर्थ भटक रहे हैं।

— जैनाचार्य श्रीमद् जयन्तसेनसूरि 'मधुकर'

